संवाद

एक ऐतिहासिक जीत

2 जुलाई, 2009 - एक सुनहरा दिन। आज कानून की धारा 377 के ख़िलाफ़ चल रही लड़ाई में बड़ी जीत मिली है। दिल्ली हाई कोर्ट ने अपने फैसले में कहा है कि *"वयस्कों के बीच अपने व्यक्तिगत, निजी जीवन में बनाए गए किसी भी प्रकार के यौन व्यवहार अपराध नहीं हैं।"* इसको लेकर दिल्ली के जंतर-मंतर के पास बड़ी चहल-पहल है। ढेर सारे लोग रंग-बिरंगे पोस्टर-बैनर लेकर खड़े हैं। कोई गा रहा है 'आदमी हूं, आदमी से प्यार करता हूं', तो कोई 'बावरा मन चाहे, देखने चला एक सपना' की धुन पर झूम रहा है। दूसरी जगह भी विविध यौनिक पहचान वाले लोग खुशी ज़ाहिर कर रहे हैं। अखबारों में और टेलिविज़न पर ये खबरें छाई हुई हैं। जिन लोगों ने कभी यौनिकता के मुद्दे पर बात नहीं की होगी, वे भी बोल रहे हैं। घर-बाहर चारों तरफ खुलकर इस पर चर्चा हो रही है। सालों की चुप्पी मानो रातों-रात टूट गई है। आखिर अदालत का यह फैसला इतना महत्वपूर्ण क्यों है?

धारा 377 बहुत पुराना कानून है। 1860 में इसे अंग्रेज़ों ने बनाया था। यह उन्होंने इंग्लैंड के उस समय के समाज की नैतिकता के आधार पर बनाया था। उसे हिन्दुस्तान में भी लागू कर दिया। धारा 377 के अनुसार किसी पुरुष, महिला या पशु के साथ 'प्राकृतिक नियमों' के विरुद्ध यौन संबंध बनाने वाला अपराधी है। इसके अनुसार दो वयस्कों के बीच मुख मैथुन, गुदा मैथुन आदि क्रियाएं अप्राकृतिक हैं। ऐसा करने वाले को आजीवन या फिर 10 साल तक की जेल की सज़ा हो सकती है। उसे जुर्माना भरना पड़ सकता है। इस कानून में उन सभी यौन क्रियाओं को अप्राकृतिक और गलत करार दिया गया है, जो प्रजनन से जुड़ी नहीं। इसलिए यह कानून सभी पर लागू था — चाहे वे शादीशुदा ही क्यों न हों। लेकिन इसके आधार पर खासकर समलैंगिक लोगों को प्रताड़ित किया गया है। इसमें सहमति के साथ और सहमति के बिना बनाए गए संबंधों में कोई फ़र्क़ नहीं किया गया है।

हमारे देश में इस कानून के ख़िलाफ़ आंदोलन की शुरूआत हुई। सबसे पहले 1994 में एड्स भेदभाव विरोधी आंदोलन (ए.बी.वी.ए.) ने अदालत में इसके लिए याचिका दी थी। फिर 2001 में दिल्ली हाई कोर्ट में जनहित याचिका (पी.आई.एल.) डाली गई। 'नाज़ फाउंडेशन' नामक एक गैर-सरकारी संस्था ने यह पहल की थी। इसकी कानूनी लड़ाई 'लॉयर्स कलेक्टिव' नाम की संस्था के माध्यम से लड़ी जा रही थी। इस याचिका में कहा गया कि यह कानून व्यक्ति के 'जीवन जीने का अधिकार' के ख़िलाफ़ है। इसका इस्तेमाल समाज द्वारा शोषण और भेदभाव को बढ़ावा देता है।

चूंकि धारा 377 का उपयोग बच्चों के ख़िलाफ़ यौन शोषण को रोकने के लिए भी होता है, इसलिए याचिका में खास मांग की गई। उसमें पूरी तरह कानून खत्म करने की बात नहीं उठाई। मांग की गई कि निजी ज़िंदगी में बालिग व्यक्तियों के बीच सहमति से बनाए गए यौन संबंधों को अपराध न माना जाए।

देश में 2003 में भाजपा के नेतृत्व वाली एन.डी.ए. की सरकार थी। सरकार ने कहा कि इस कानून में बदलाव से मनमाने यौन व्यवहार को छूट मिल जाएगी। उसका तर्क था कि हिंदुस्तान के लोगों के लिए समलैंगिकता मुद्दा नहीं है। इसके जवाब में महिला अधिकार, बाल अधिकार, स्वास्थ्य अधिकार, मानवाधिकार आदि के लिए काम करने वाले कुछ संगठन सामने आए। उन्होंने इस मुद्दे पर एक मंच बनाया। इसका नाम था 'वॉयसेज़ अगेंस्ट 377'। इस मंच ने समलैंगिकता के मुद्दे पर जागरूकता बढ़ाने का काम किया। 2006 में दिल्ली हाई कोर्ट में मुख्य याचिका के समर्थन में एक याचिका दी। इन्हीं याचिकाओं पर सुनवाई करते हुए 2 जुलाई, 2009 को फैसला आया था।

फैसला देने वाले जज शाह और जज मुरलीधर ने तर्क दिया, "हमारे संविधान का मूल मूल्य अलग-अलग लोगों को सम्मिलित करने का है। हमारा यह मानना

है कि यह मूल्य पीढ़ियों से समाज में बसा है।'' जजों ने पंडित नेहरू, डॉ. अंबेडकर आदि के हवाले से कहा कि देश का संविधान दुनिया को अपने सपनों और आशाओं के बारे में बताता है। यदि समाज द्वारा कुछ लोगों के प्रति भेदभाव किया जाता है तो यह ज़रूरी नहीं कि संविधान भी इसी बात को मान्यता दे। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया, ''संविधान साफ कहता है कि धर्म, जाति, लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता। यहां 'लिंग' की परिभाषा में 'लैंगिकता' को शामिल करना चाहिए।'' यानी फैसले के मुताबिक जिस तरह जेंडर के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता, आज से यौनिकता के आधार पर भी भेदभाव करना संविधान के ख़िलाफ़ है।

इस ऐतिहासिक फैसले का विरोध करने वालों की भी कमी नहीं। कुछ धर्मगुरू और राजनीतिक दल भी हल्ला मचा रहे हैं। शायद किसी भी क्रांति की शुरूआत से समाज के नियमों को धक्का पहुंचता ही है। जैसे 1856 में विधवाओं को दोबारा शादी करने की इजाज़त देने वाले कानून पर भयानक हंगामा हुआ था। मगर लड़कर हासिल की गई ऐसी सफलताओं से हमें बदलाव की उम्मीद दिखाई देती है।

साभारः आपका पिटारा, अंक 96,
चाहतः यौनिकता की विविधता और राजनीति